

Samayik Paath

प्रेम भाव हो सब जीवों से,
गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा स्रोत बहे दुखियों पर,
दुर्जन में मध्यस्थ विभो॥1॥

यह अनन्त बल शील आत्मा,
हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से,
वह अनन्त बल दो मुझको॥2॥

सुख दुख बैरी बन्धु वर्ग में,
काँच कनक में समता हो।
वन उपवन प्रासाद कुटी में नहीं खेद,
नहिं ममता हो॥3॥

जिस सुन्दर तम पथ पर चलकर,
जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा,
बना रहे अनुशीलन पथ॥4॥

एकेन्द्रिय आदिक जीवों की
यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह,
निष्फल हो दुष्कृत्य विभो॥5॥

मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन
जो कुछ किया कषायों से।
विपथ गमन सब कालुष मेरे,
मिट जावें सद्भावों से॥6॥

चतुर वैद्य विष विक्षत करता,
त्यों प्रभु मैं भी आदि उपान्त।
अपनी निन्दा आलोचन से करता हूँ
पापों को शान्त॥7॥

सत्य अहिंसादिक व्रत में भी
मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके
शीलाचरण विलीन किया॥8॥

कभी वासना की सरिता का,

गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा
मुझ में पागलपन आया॥9॥

मैंने छली और मायावी,
हो असत्य आचरण किया।
परनिन्दा गाली चुगली जो
मुँह पर आया वमन किया॥10॥

निरभिमान उज्ज्वल मानस हो,
सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश,
हिय में निर्मल ज्ञान बहे॥11॥

मुनि चक्री शक्री के हिय में,
जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह,
परम देव मम हृदय रहे॥12॥

दर्शन ज्ञान स्वभावी जिसने,
सब विकार हों वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमात्म,
परम देव मम हृदय रहे॥13॥

जो भव दुख का विध्वंसक है,
विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह,
बसे हृदय में देव महान्॥14॥

मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है,
जनम मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य दर्शी
वह देव रहे मम हृदय समीप॥15॥

निखिल विश्व के वशीकरण वे,
राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वभावी,
परम देव मम हृदय रहे॥16॥

देख रहा जो निखिल विश्व को
कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार
वह देव करें मम हृदय पवित्र॥17॥

कर्म कलंक अछूत न जिसको
कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो
परम शरण मुझको वह आप्त ॥18॥

जिसकी दिव्य ज्योति के आगे,
फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व पर प्रकाशी,
परम शरण मुझको वह आप्त ॥19॥

जिसके ज्ञान रूप दर्पण में,
स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्तसे रहित शान्तशिव,
परम शरण मुझको वह आप्त ॥20॥

जैसे अग्नि जलाती तरु को,
तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय विषाद चिन्ता नहीं जिनको,
परम शरण मुझको वह देव ॥21॥

तृण, चौकी, शिल, शैलशिखर नहीं,
आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन,
नहीं समाधि के साधन ॥22॥

इष्ट वियोग अनिष्ट योग में,
विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विषय वासना,
उपादेय निर्मल आतम ॥23॥

बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा,
और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को,
मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥24॥

अपनी निधि तो अपने में है,
बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग तृष्णा है,
झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥25॥

अक्षय है शाश्वत है आत्मा,
निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है, सब पर है,
कर्माधीन विनाशी है ॥26॥

तन से जिसका ऐक्य नहीं हो,
सुत, तिय, मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से,
रोम समूह रहे कैसे ॥27॥

महा कष्ट पाता जो करता,
पर पदार्थ, जड़-देह संयोग।
मोक्षमहल का पथ है सीधा,
जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥28॥

जो संसार पतन के कारण,
उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निद्रवन्द आत्मा,
फिर-फिर लीन उसी में हो ॥29॥

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ,
फल निश्चय ही वे देते।
करे आप, फल देय अन्य तो
स्वयं किये निष्फल होते ॥30॥

अपने कर्म सिवाय जीव को,
कोई न फल देता कुछ भी।
पर देता है यह विचार तज स्थिर हो,
छोड़ प्रमादी बुद्धि ॥31॥

निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर है,
अमितगति वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते,
पाते निर्मल पद निर्वाण ॥32॥

दोहा

इन बत्तीस पदों से जो कोई,
परमात्म को ध्याते हैं।
साँची सामायिक को पाकर,
भवोदधि तर जाते हैं ॥